



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(4): 143-145

© 2017 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 23-05-2017

Accepted: 24-06-2017

अश्वनी कुमार द्विवेदी

शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत



“हलन्त्यम्” एवं “आदिरन्त्येन सहेता” सूत्रगत अन्योन्याश्रय दोष परिहार—लक्ष्मी टीका के परिप्रेक्ष्य में

अश्वनी कुमार द्विवेदी

“सृष्टिभ्यः आगमात् सिद्धा साधवो धर्मसाधनम्”¹ भर्तृहरि के इस वचन से प्रमाणित होता है कि शिष्टों से प्राप्त आगमस्वरूप व्याकरण से अनुप्राणित भाषा ही धर्म साधन के रूप में सभी मानवों के लिए सुलभ है।

यद्यपि समय—समय पर अनेक व्याकरणों की रचना हुई, जो वर्तमान में भी प्राप्त होते हैं तथापि पाणिनि व्याकरण उन प्राप्त सभी व्याकरणों में सर्वातिषायी है।

यह संस्कृत भाषा का एक पूर्ण व्याकरण है, जिसमें एक भी वर्ण निरर्थक नहीं है। जिसे महर्षि पतंजलि ने प्रतिपादित किया है —

“महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते आचार्यस्य। अत्र वर्णनाप्यनर्थकेन न भवितव्यम्। किं पुनरियता सूत्रेण।”²

लौकिक एवं वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों के अनुषासक होने से यह वेदाङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके अध्ययन—अध्यापन की दो पद्धतियाँ प्राप्त होती हैं। सूत्रानुसारी एवं प्रक्रियानुसारी। पहली अष्टाध्यायी सूत्रक्रमानुसार दूसरी अष्टाध्यायी सूत्रक्रम को भंग कर व्युत्क्रम से प्रयोगानुसारी। सूत्रानुसारीक्रम के रूपावतार प्रक्रियाकौमुदी रूपमालादि ग्रंथ हैं। प्रक्रियाक्रम का पूर्ण ग्रंथ सिद्धान्तकौमुदी है, जो पाणिनि के सभी सूत्रों पर उपलब्ध है। यह ग्रन्थ पाणिनि सूत्रों का क्रम भंग कर नवीन उद्भावनाओं से संवलित एवं ग्रन्थ के हार्द को अभिव्यक्त करने वाली संक्षिप्त वृत्तियों, पक्तियों एवं उदाहरणों से परिपूर्ण है।

इसके परिवर्धन हेतु समय—समय पर अनेक व्याख्याओं का प्रणयन किया गया। जिसमें—बलमनोरमा, तत्वबोधिनी, लघुषब्दन्दुषेखर, प्रौढमनोरमा, लक्ष्मीटीकादि प्रमुख हैं। जिसमें श्रीसभापरिषद्मोपाध्याय द्वारा रचित लक्ष्मीटीका अपने विषिष्ट नव्यन्यायषैली एवं निजवैषिष्ट्य (स्वतन्त्र मत) के कारण प्रमुख स्थान रखती है। बालकृष्ण शर्मपंचोली ने इसे पूर्णा एवं सर्वातिषायिनी कहा है —

“सिद्धान्तकौमुदीव्याख्या सर्वव्याख्यातिषायिनी।
पूर्णासर्वप्रकारेण लक्ष्मीर्वाग्मिन्मनो हरेत्।”³

इन सभी विषिष्टताओं के कारण शोधार्थी द्वारा इस व्याख्या को अपने शोध विषय के रूप में स्वीकार किया गया। मेरा शोध विषय “सिद्धान्तकौमुदी की लक्ष्मीटीका का समीक्षात्मक अध्ययन” है। प्रस्तुत शोध—पत्र में उक्त दोनों सूत्रगत अन्योन्याश्रय दोष निवारण हेतु वृत्तिकार के आवृत्ति पक्ष एवं नागेष द्वारा उपस्थापित सूत्रत्रय न्यास पर विचार पूर्वक टीकाकार के स्वतन्त्र मत का प्रतिपादन किया जा रहा है।

“हलन्त्यम्”⁴ इस इत्संज्ञा विधायक शास्त्र का “उपदेशेऽजनुनासिक इत्”⁵ से ‘उपदेशे’ एवं ‘इत्’ पद की अनुवृत्ति करने पर अर्थ फलित होता है — उपदेशावस्था में अन्तिम हल् वर्ण की इत्संज्ञा हो।

यहाँ पर हल् पद का “न विभक्तौ तुस्माः”⁶ इस निषेध शास्त्र की सार्थकता के समर्थ से “हकारादि लान्त समुदाय” अर्थ होगा। क्योंकि उक्तषास्त्र न विभक्तौ की सार्थकता के लिए हल् पद से व्यंजन वर्णों का ग्रहण नितान्त अपेक्षित है क्योंकि शाब्दबोध के प्रति शक्तिज्ञानजन्य उपस्थिति के कारण होने से हल् पद से व्यंजन वर्णों का बोध हल् पद में व्यंजननिरूपित शक्तिज्ञान के बिना असम्भव है। नहि ऐसा कोई कोषादि उपलब्ध हैं, जिससे उक्त शक्तिज्ञान हो सके।

Correspondence

अश्वनी कुमार द्विवेदी

शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

इस प्रकार हल् पद में व्यंजननिरूपित शक्तिज्ञान अन्त्य इत् के सहित आदि और मध्यगामी वर्णों की इत्संज्ञा इत्यर्थक “आदिरन्त्येन सहेता”⁷ सूत्र के बिना असम्भव है। “वाक्यार्थज्ञाने पदार्थज्ञानं कारणम्”⁸ इस न्याय से आदिरन्त्येन शास्त्र का भी वाक्यार्थज्ञान इत्पदार्थज्ञान के बिना सम्भव नहीं है एवं इत्पदपठितज्ञान हलन्त्यम् सूत्रार्थ बोध के बिना असम्भव है।

इस प्रकार हल् प्रत्याहार सिद्धि में इत्पदार्थज्ञान हल् पदार्थज्ञानाधीन एवं हल् पदार्थज्ञान इत्पदार्थज्ञानाधीन होने से परस्परापेक्षत्वरूप अथवा स्वज्ञाप्तयधीनज्ञापितकत्व रूप अन्योन्याश्रय दोष यहां उपस्थित होता है —“परस्परापेक्षत्वमन्योन्याश्रयत्वम्।”⁹ उक्त दोष के निराकरण में आचार्यों के अलग-अलग मत हैं।

कौमुदीकार का मत

दीक्षित ने अन्योन्याश्रय दोष परिहार के लिए हलन्त्यम् सूत्र की आवृत्ति कर दी और आवृत्त शास्त्र का “सप्तमी शौण्डेः”¹⁰ सूत्र में सप्तमी योगविभाग से समास। अतः “हलि अन्त्यम्” इस विग्रह से आवृत्त शास्त्र अन्तिम माहेष्वर सूत्र (हल् 14) के लकारेत्संज्ञा विधायक हुआ। परन्तुयोगविभाग का उल्लेख भाष्य में न होने से आचार्य ने “सुप्सुपा” से समास की बात अथवा “हलः अन्त्यम्” षष्ठीतत्पुरुष समास की बात कही —

“यद्वा षष्ठीतत्पुरुषोऽयम्।”¹¹

इस प्रसंग में भाष्यकार कावचन “स्यादेतत्”¹² यहां पर सम्भावना में लिंग लकार है, अर्थात् जो वक्ष्यमाण है हलन्त्यम् घटक हल् इसमें तन्त्र हो या एकपेश हो अथवा इसकी आवृत्ति हो इसकी सम्भावना है। “बोद्धुस्त्वावृत्त्या एकेन वाक्येनानेकार्थबोधः”¹³ इस सिद्धान्तानुसार बौद्धाओं के बोध के लिए आवृत्ति आवश्यक है। अतः आवृत्त जो “हल्” उसका अर्थ होगा “ह समीपवर्तिलकारः इत्संज्ञको भवति” यहां पर सामीप्य षष्ठ्यर्थ है— इस प्रकार दीक्षित ने उक्त दोष का आवृत्ति द्वारा निराकरण किया है।¹⁴

यहां परप्रथम आवृत्त “हलन्त्यम्” 1/3/3 से “हल्” (मा.सू.14) सूत्र के लकार की इत्संज्ञा होने से “आदिरन्त्येन0” सूत्र से हलादि प्रत्याहार सिद्ध हुए।

उपदेशेऽन्त्यं हलित् इत्यर्थक द्वितीय “हलन्त्यम्” 1/3/3 इस मूल सूत्र से जष्, शस् इत्यादि विभक्तिस्थ सकार की इत्संज्ञा प्राप्त होने पर इत्संज्ञा वाराणार्थ “न विभक्तौ तुस्माः” सूत्र चरितार्थ होता है। साथ ही जो बौद्धाओं को अन्योन्याश्रय दोष का भ्रम या उसका निवारण भी हो गया।

शेखरकार का मत —

यहां पर शेखरकार अन्योन्याश्रय दोष परिहार के लिए अन्य उपाय की चर्चा करते हैं कि “उपदेशे इदन्त्यम्” यह पृथक सूत्र “अच्” एवं “अनुनासिकः” इस प्रकार सूत्रत्रय न्यास करके प्रथम सूत्र उपदेशे इदन्त्यम् का अर्थ उपदेशावस्था में अन्तिम हल् एवं अच् की इत्संज्ञा हो। इस प्रकार सर्वविध अन्त्यत्व की इत्संज्ञा स्वीकार करने पर अणादि प्रत्याहारों की सिद्धि हो जाएगी साथ ही अनन्त्य अच् की इत्संज्ञा विधान करने के लिए “उपदेशे अच् इत्” इत्यर्थक अच् यह द्वितीय सूत्र उपलब्ध है।

यदि यहां पर यह कहें कि उक्त दोनों सूत्रों से भू, रू, उर्णु इत्यादिस्थ अर्चों की इत्संज्ञा होने लगेगी तो ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि “या या संज्ञा सा सा फलवती” न्याय के अनुसार जो भी संज्ञा होती उसका फल भी होता है। अतः यहां पर फलाभाव है ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि “स्वरतिसूतिसूयतिधूजूदितो वा”¹⁵ “उदितो वा”¹⁶ इत्यादि से सूत्र से उदित धातुओं को विकल्प से ईडागम होता है।

यहां पर उक्त दोनों सूत्रों से अच् और हल् की इत्संज्ञा रूप फल होने से “अनुनासिकः” यह तृतीय सूत्र व्यर्थ होने लगेगा। क्योंकि अन्त्य एवं अनन्त्य अर्चों की उक्त दोनों सूत्रों से इत्संज्ञा सिद्ध है। अतः उच्चारण सामर्थ्यात् एवं “सिद्धौ सत्यामारभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्पते”¹⁷ इस न्याय से अनुनासिकः यह सूत्र नियम

का रूप धारण कर लेगा। जिसका अर्थ होगा कि यदि अच् की इत्संज्ञा हो तो अनुनासिक की ही हो। अतः इस नियम से अनुनासिक रूप भू, रू, उर्णु इत्यादिस्थ अर्चों की इत्संज्ञा का वारण भी हो जायेगा।

यहां पर यदि कहें कि जो तृतीय सूत्र का अर्थ किया है अच् की इत्संज्ञा हो तो अनुनासिक की ही हो इस शुद्ध नियम का विपरीत नियम भी होना चाहिए —“यत्र यत्र शुद्धनियमः तत्र तत्र विपरीतनियमः” इस वचन के अनुसार यहां पर विपरीत नियम होगा अनुनासिक की इत्संज्ञा हो तो अच् की ही हो। इस विपरीत नियम को मानने से “मिदचोऽन्त्यात्परः” एवं “ञिनत्यादिर्नित्यम्” इत्यादि सूत्रों की व्यर्थापत्ति होने लगेगी क्योंकि अच् समुदाय में अन्तावयव का मित् आगम होता है, यह प्रथम सूत्र का अर्थ है। यदि विपरीत नियम को मानेंगे तो मित्मिलेगा ही नहीं क्योंकि विपरीत नियम से अनुनासिक अच् की ही इत्संज्ञा होगी न कि हल् वर्णों की। इसी प्रकार द्वितीय सूत्र भी हल् वर्ण ञिनत् और नित् का नित्य आदि उदात्त का विधान करता है।

अतः व्यंजन अनुनासिक इत्संज्ञक वर्णों को निमित्त मानकर कार्य करने वाले शास्त्रों की व्यर्थापत्ति वारणाय यहां पर विपरीत नियम का परित्याग सर्वथा उचित है।

शेखरकार द्वारा उपस्थापित सूत्रत्रयन्यास पक्ष की समीक्षा करने पर यह बोध होता है कि उक्त न्यास मत स्वीकार पक्ष में हलन्त्यम् सूत्र की आवृत्ति नहीं करनी पड़ेगी साथ ही हल् पद ग्रहण की करने की आवष्यकता भी नहीं होगी और अन्योन्याश्रय दोष भी उपस्थित नहीं होगा।

यदि कहे आर्षसूत्र परायण में जो पुण्य-जनकता है, तादृष पुण्यजनकता अनार्षसूत्रकरण में नहीं है तो ऐसा भी नहीं कह सकते, पुण्य जनकत्व अनापत्ति होने से, क्योंकि भाष्यकार भी जगह-जगह पर कहते हैं—“अपाणिनीयन्तु भवति।” इसको सूत्र भेद भी नहीं कह सकते क्योंकि भाष्यकार “अच् उपसर्गान्तः”¹⁷ सूत्रस्थ भाष्य में कहते हैं कि उतना ही बड़ा सूत्र रूपान्तरण अथवा उससे बड़ा सूत्र करण ही सूत्रभेद की कोटि में आता है, यदि उसी सूत्र को संक्षिप्त करके कहा जाय तो वह दोष धायक नहीं होता है—

“यदि सूत्रभेदं तमुपाचरन्ति यत्र तदेवान्यन्क्रियते, भूयो वा यदि तदेवोपसंहृत्य क्रियते नासौ सूत्रभेदः।”¹⁸

यहां पर ग्रन्थकार का आशय है कि यदि यहां पर कुछ लाघव दिख रहा है तो यह न्यास अनार्ष प्रयोजक नहीं होगा। परन्तु यहां पर तो दो सूत्रों के स्थान पर तीन सूत्र करना पड़ रहा है, साथ ही विपरीत नियम ज्ञापकाश्रयरूप गौरव हो रहा है। साथ ही जिस न्यास में अन्योन्याश्रय दोष, हल् ग्रहण आवृत्ति को आप गौरव कह रहे थे। उसके उपेक्षा वर्णाभिव्यक्तिजनक कण्ठ तालु आदि स्थानों का अभिघात, योगविभाग नियम, विपरीतनियम का धारण करना इत्यादि जो मनो व्यापाररूपी गौरव हो रहा है, वह गौरव नहीं ऐसी कोई राजाज्ञा नहीं है। इसलिए तीन सूत्र करने वाला मत अतिगौरवग्रस्त होने के कारण अमान्य है। अतः हलन्त्यम् सूत्र के आवृत्ति वाला पक्ष ही उचित समझना चाहिए।

लक्ष्मीटीकाकार का मत

यहां पर ग्रन्थकार अपना स्वतन्त्र मत है कि यदि “हलन्त्यम्” इस सूत्र के स्थान पर “व्यञ्जनमन्त्यम्” इस सूत्र का न्यास करने पर न ही अन्योन्याश्रय दोष होगा न हि गौरव का विषय बनेगा, साथ ही व्यंजनपद की शक्ति स्वरेतर वर्णों में लोक प्रसिद्ध है, कहा भी जाता है —“न हि लोकाद्भिद्यते शास्त्रम्।”

इस न्यास पक्ष के प्रमाणिकता के लिए भाष्य संगत भी दिखाया गया है। ग्रन्थकार का कथन है कि भाष्यकार ने भी स्वयं हलबुद्धियुक्त व्यंजन पद का प्रयोग किया है —“नाचं बिना व्यंजनस्योच्चारणमपि भवति।”¹⁹

यहां पर लक्ष्मीटीकाकार का अपना निजमत है —

“न च भाष्यविरोधः लाघवाद्बुद्धिना पाणिनिना एवमेव कथं न कृतम् इत्यत्रैव न्यासतात्पर्यादिति दिक्।”²⁰

यहां पर उक्त दोष वारणार्थ टीकाकार का मत उचित ही प्रतीत होता है क्योंकि ऐसा करने से हलन्त्यम् सूत्र को लोक प्रसिद्ध व्यंजनपक्षित का ज्ञान हो जाने से इत्संज्ञा एवं इत्पदार्थ का ज्ञान हो जाने से “आदिरन्त्येन0” सूत्र भी प्रवृत्त हो जाएगा। जिससे अन्धोन्ध्याश्रय दोष उपस्थित नहीं होगा और यदि कहें हल् पद व्यंजन पद के अपेक्षा लाघव है तो यह भी उचित नहीं है क्योंकि समानार्थक पदों में लाघवता नहीं देखी जाती है। यथा विकल्प के लिए वा, विभाषा, अन्यतरस्याम्, एवं आचार्यों का नाम उल्लेख, ये सभी शब्द विकल्पार्थक पाणिनि प्रयोग से पता चलता है। अतः टीकाकार का आशय भी यही है कि यह न तो भाष्य विरोधकन्यास है और न ही लाघवता के विषय वाला। अतः आदर बुद्धि वाले आचार्य पाणिनि ने “व्यञ्जनमन्त्यम्” ऐसा सूत्र निर्माण क्यों नहीं किया, यही सूत्रन्यास का तात्पर्य है। टीकाकार के अनुसार यह न्यास करना चाहिए था, जो सर्वथा उचित था।

संदर्भ

1. वाक्यपदीप 1-27।
2. म.भा. 1-1-1।
3. लक्ष्मीटीका, संज्ञाप्रकरण के आमुख, पृष्ठ 4।
4. अष्टा. 1-3-3।
5. अष्टा. 1-3-2।
6. अष्टा. 1-3-4।
7. अष्टा. 1-3-71।
8. लक्ष्मीटीका, संज्ञा प्रकरण, पृष्ठ 14।
9. लक्ष्मीटीका, संज्ञा प्रकरण, पृष्ठ 14।
10. अष्टा. 2-1-40।
11. दीक्षित, प्रौ.म. 1-3-3।
12. म.भा. 1-3-3।
13. लक्ष्मीटीका, संज्ञाप्रकरण, पृष्ठ 15।
14. दीक्षित, प्रौ.म. 1-3-3।
15. अष्टा. 7-2-44।
16. अष्टा. 7-3-56।
17. लक्ष्मीटीका, संज्ञाप्रकरण, पृष्ठ 15।
18. लक्ष्मीटीका, संज्ञाप्रकरण, पृष्ठ 15।
19. म.भा. 1-2-1, पृष्ठ 206।
20. लक्ष्मीटीका, संज्ञा, पृष्ठ 15।